IJAER/May-June 2020/Volume-9/Issue-6 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

गुप्तकाल में वर्ण परंपरागत वर्ण व्यवस्था

Manisha Meena

Assistant Professor History

Govt.College karauli raj

गुप्तयुगीन सामज में वर्ण व्यवस्था पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित थी। भारतीय समाज के परंपरागत चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के अतिरिक्त कुछ अन्य जाति भी अस्तित्व में आ चुकी थी। चारों वर्णों की सामाजिक स्थिति में विभेद किया जाता था। वाराहमिहिर के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के घर क्रमशः पांच, चार, तीन तथा दो कमरों वाले होने चाहिए। न्याय व्यवस्था में भी विभिन्न वर्णों की स्थिति के अनुसार भेद–भाव करने का विधान मिलता है। परंतु इस समय जाति व्यवस्था उतनी अधिक जटिल नहीं हो पाई थी, जितनी कि परवर्ती कालों में देखने को मिलती है।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय समाज का ढाँचा गुप्त काल में भी स्थिर रहा। गुप्तकालीन समाज व्यवस्था की झांकी पुराणों, स्मृति–ग्रन्थों व अभिलेखों से प्राप्त होती है। स्मृति ग्रन्थों के नियम व्यवहारतः समाज में किस हद तक लागू होते थे, यह संदेहास्पद है। भारतीय समाज की प्रारम्भिक व्यवस्था चार वर्णों पर आधारित थी– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र। प्रारम्भ में इसका आधार कर्म था लेकिन धीरे–धीरे यह जन्म पर आधारित हो गयी। मनुस्मृति के समय तक इसका स्वरूप कठोर हो गया था। गुप्तकालीन अन्य स्मृतियों में भी समाज के कठोर रूप का चित्रण मिलता है। गुप्तकालीन समाज परम्परागत चार वर्णों में विभाजित था। स्मृति साहित्य में चारों वर्णों के कर्त्तव्य बताए गये हैं। इनमें आर्यावर्त के धर्म क्षेत्र का भी उल्लेख हुआ है। म्लेच्छों को भारतीय समाज से अलग हट कर देखा गया। चातुर्वर्णय व्यवस्था का रक्षक राजा को माना गया है। चातुर्वर्णय व्यवस्था में बाहरी व्यक्तियों को प्रवेश करने तथा इससे लाभान्वित होने की अनुमति तो थी, पर सामाजिक व्यवस्था की स्थिरता को भी कायम रखने की कोशिश की जाती थी। गुप्तकाल तक आते–आते परम्परागत वर्ण व्यवस्था में बहुत से परिवर्तन आ चुके थे। कालिदास की रचनाओं में भी गुप्तकालीन कठोरता दिखाई देती है। व्यवहारिक दृष्टि से कठोरता निश्चय ही कम हुई होगी। प्रमुख चार वर्णों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन गुप्तकाल के परिप्रेक्ष्य में करना उचित होगा।

ब्राह्मणों के अन्दर भी बहुत से उपभेद पैदा होने लगे थे जिनका आधार गोत्र व प्रवर था। दण्ड देते समय भी राजा ब्राह्मणों के प्रति उदारता का व्यवहार करता था। स्मृति साहित्य में वर्ण–विभेद की भावना दृष्टिगोचर होती है। भयंकर अपराध करने पर भी ब्राह्मण को मृत्यु दण्ड नहीं दिया जा सकता था। शूद्रक के मृच्छकटिकम के नवें अंक में ब्राह्मण चारूदत्त के हत्यारा सिद्ध हो जाने पर भी उसे प्राण–दण्ड नहीं दिया गया था। देश कुमार चरित ब्राह्य मंत्री राजद्रोह का दोषी है, किन्तु उसे केवल अन्धा बना दिया गया था। उन्हें अर्थ दण्ड ही मिलता था। देश–निष्कासन का दण्ड भी उन्हें दिया जा सकता था। ब्राह्मणों को अन्य वर्णों की तुलना में दंड कम मिलता था। बृहस्पति के अनुसार सभी प्रकार के दिव्य सबसे कराये जा सकते थे लेकिन ब्राह्मण से विष दिव्य नहीं कराया जाना चाहिए। साक्ष्य देने के संदर्भ में भी भेदभाव निहित था। इस प्रकार समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। उनके मुख्यतया छह कर्म थे– वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना। ये कार्य उसके स्वधर्म के अन्तर्गत आते थे। इसके अतिरिक्त अपनी तपश्चर्या और ज्ञान से वह समाज का मार्ग–दर्शन करता था। ब्राह्मणों में भी उपजातियाँ विकसित हो गई थीं। वेदों के अध्ययन को ध्यान में रखकर उसका विभाजन किया गया था। यजुर्वेदी ब्राह्मण–उड़ीसा, तेलंगाना, कोशल और मध्य प्रदेश में थे। सामवेदी ब्राह्मण–काठियावाड़ क्षेत्र में रहते थे। अथर्ववेदी ब्राह्मण–मैसूर, बेलगाँव और वल्लभी में रहते

हैं। ऋग्वैदिक ब्राह्मणों की चर्चा गुप्तकाल में नहीं मिलती है। उत्तरी भारत में अंतर्वेदी ब्राहमण, राजस्थान में श्रीमाली ब्राह्मण और गुजरात में नगर ब्राह्मण अपने को अन्य ब्राहमणों से श्रेष्ठ मानते थे। वैसे ब्राहमणों का मुख्य कार्य धार्मिक था। परन्तु वे अन्य प्रकार के पेशे भी अपनाने लगे थे। स्मितिग्रंथों में आपद धर्म के समयएशे अपनाने की अनुमति दी गयी। जिस तरह कौटिल्य ने विभिन्न वर्णों के लिए विभिन्न बस्तियों का विधान किया है, उसी प्रकार वराहमिहिर ने विभिन्न वर्णों के लिए भिन्न–भिन्न व्यवस्था बताई है। वराहमिहिर के अनुसार ब्राह्मण के 5 कमरे, क्षत्रिय के मकान में 4, वैश्य के मकान में 3 और शूद्र के मकान में 2 कमरे होने चाहिए। न्याय व्यवस्था में भी वर्ण भेद को ध्यान में रखा गया था। ऐसा माना जाता था कि ब्राह्मण की परीक्षा तुला से, क्षत्रिय की अग्नि से, की परीक्षा जल से तथा शूद्र की परीक्षा विष से की जानी चाहिए। साक्षी के विषय में बृहस्पति का मानना है कि साक्षी कुलीन हो, तथा वह नियमपूर्वक वेदों एवं स्मृतियों का अध्ययन करता हो। इस बात की भी चर्चा है कि की जाति प्रतिवादी की जाति के समान हो। परन्तु नारद इस बात का खंडन करते हैं और उनका मानना है कि सभी वर्ण के लोग एक–दूसरे के साक्षी हो सकते हैं। दंड व्यवस्था भी वर्ण पर आधारित थी। महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है कि अगर कोई क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की हत्या करे तो उसे अलग–अलग दण्ड दिया जाए। नारद के अनुसार चोरी करने पर ब्राह्मण का अपराध सबसे अधिक और शूद्र का अपराध सबसे कम होता है। विष्णु ने हत्या के पाप से शुद्धि के संदर्भ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की हत्या के लिए क्रमशः 12, 9 और 3 वर्ष का महाव्रत नामक तप बताया है। दायविधि में यह नियम बना रहा कि उच्च वर्ण के शूद्र पुत्र को संपति में सबसे कम हिस्सा मिले परन्तु वर्ण व्यवस्था सुचारू रूप से नहीं चल रही थी क्योंकि महाभारत के शांति पर्व के कम से कम 9 पदों में ब्राह्मण और क्षत्रियों के बीच सहयोग की बात उठायी गई है। इससे आभास होता है कि उन्हें वैश्यों एवं शूद्रों के विरोध का भय था।

क्षत्रिय– चार वर्ण वाली व्यवस्था में क्षत्रियों का दूसरा स्थान था। धर्मशास्त्रों के अनुसार क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना, दान करना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना आदि माने गए हैं। स्मृतिकार विष्णु के क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य प्रजा का पालन मन है। बौद्ध ग्रंथों में क्षत्रियों की प्रमुखता अधिक है। प्राचीन काल में कई क्षत्रिय महान् विद्वान् हुए थे। वैदिक कालीन क्षत्रिय विद्वानों में जनक, प्रवाहण जाबालि आदि उल्लेखनीय रहे हैं। आपात स्थिति में क्षत्रिय भी वेश्यावृति अपना सकते थे। गुप्तकाल में बहुत से क्षत्रिय व्यापार भी करते थे। इंदौर से प्राप्त स्कंदगुप्त के एक अभिलेख में इसका उल्लेख है। ह्वेनसांग ने क्षत्रियों की प्रशंसा की है। वे दयालु, परोपकारी व् युद्ध कला प्रवीण होते थे। मनु के अनुसार 10 वर्षीय ब्राह्मण भी 100 वर्षीय क्षत्रिय से श्रेष्ठ होता है। उसके अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय पिता और पुत्र के समान है। गुप्तकाल के क्षत्रिय द्वारा अपने से वर्ण के व्यवसाय अपनाये जाने का भी उदाहरण मिलता है। इंदौर से स्कंदगुप्त के काल के एक अभिलेख के अनुसार क्षत्रिय लोग वैश्य का भी कार्य करते थे। मनु क्षत्रियों को वैश्य–कर्म अपनाने की अनुमति देते हैं परन्तु लिए कृषि–कर्म वर्जित मानते हैं। किन्तु क्षत्रियों का मुख्य कार्य देश और की रक्षा करना था। युद्ध उनके जीवन का मुख्य पहलू था। युद्ध में सारी वस्तुएँ क्षत्रिय की होती थीं। मनु के अनुसार रथ, घोड़ा, हाथी, धान्य, पशु, स्त्रियाँ (दासी आदि), सब प्रकार के द्रव्य, और कुप्य (सोना–चांदी के अतिरिक्त ताँबा–पीतल आदि धातुएँ) युद्ध के विजेता की वस्तुएँ मानी जाती थीं।

वैश्य– वैश्य वर्ण का प्रमुख व्यवसाय कृषि और व्यापार था। धर्मशास्त्रों में इनका कर्तव्य अध्ययन, यजन, दान, कृषि, पशुपालन और वाणिज्य बताया गया है। गुप्त युग में इन्हें वणिक, श्रेष्ठि और सार्थवाह भी कहा गया है। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ वैश्य वर्ण के लोगों को क्षत्रिय कर्म करते हुए दिखाया गया है। वैश्य राजकीय कार्य भी करते थे। कई स्मृतियों में यह भी कहा गुया है कि ब्राह्मणों और क्षत्रियों की सेवा करना भी वैश्यों का कर्त्तव्य है। वास्तव में वैश्यों का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत था। इसमें विभिन्न व्यवसायों वाले लोग शामिल थे जैसे– कृषक, व्यापारी, लुहार, सुनार, बढाई, तेली सूत कातने वाले, बुनकर, पशुपालक, आदि। इस काल में वैश्यों की स्थिति में गिरावट के चिन्ह भी मिलते हैं। शूद्र उस समय भी कृषक थे। गुप्तकाल में व्यापारी, गोपालक, सुनार, बढ़ई आदि व्यावसायिक समूहों ने अपनी श्रेणियाँ बना ली थीं। वैश्य भी आपातकाल में दूसरे वर्ण के कर्म अपना सकते थे। वे सैनिक कर्म भी कर सकते कि गौ, ब्राह्मण और वर्ण की रक्षा के लिए वैश्य भी शस्त्र ग्रहण कर सकते थे। वैश्य न्यायालय की प्रमुख सभा के सदस्य भी बन सकते थे। विषय आदि की शासन परिषदों में श्रेष्ठि, सार्थवाह, कुलिक आदि प्रतिनिधि रहते थे। परमेश्वरी लाल गुप्ता इन गुप्त शासकों को वैश्य वर्ण स्वीकार करते हैं। स्पष्ट है कि वैश्य वर्ण ने गुप्तकाल में बहुत प्रगति की। वर्ण के

लोग अपनी दानशीलता के लिए भी प्रसिद्ध थे। संभवतः ये अपनी आय का बहुत सा हिस्सा सार्वजनिक हित में खर्च करते थे, फाह्यान के यात्रा विवरण में इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। फाह्यान ने औषधालयों व पंथशालाओं का उल्लेख किया है। औषधालयों में निर्धन, अपंग, अनाथ, विधवा, निःसंतान, रोगी आदि आते थे और वहाँ उन्हें सब तरह की सहायता मिलती थी। पंथशालाओं के बारे में फाह्यान ने कहा है कि वहाँ कमरे, चारपाई, बिस्तर आदि यात्रियों को दिये जाते थे।

शूद्र– अतिम वर्ण शूद्रों का था। साधारणतः शूद्रों का कार्य द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की सेवा करना था। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि शूद्र व्यापारी, कृषक और कारीगर भी हो सकता था। स्पष्ट है कि गुप्तकालीन शूद्र खेती व व्यवसाय करते थे। प्रशासनिक गतिविधियों में भी उनकी साझेदारी होती थी। शूद्रों की स्थिति मौर्यकाल की अपेक्षा अधिक संतोषजनक लगती है। ह्वेनसांग ने शूद्रों के राजा होने का उल्लेख किया है। सातवीं शताब्दी ईसवी के लगभग शूद्र खेतिहरों का उल्लेख है। याज्ञवल्क्य ने ब्राहमण पिता और शुद्र माता से उत्पन्न पुत्र को संपत्ति का अधिकारी माना है परन्तु वृहस्पति नहीं मानते हैं। मनु ने शूद्रों की सेवानिवृत्ति पर बहुत बल दिया था परन्तु याज्ञवल्क्य का दृष्टिकोण उदार है। उसने शूद्रों को व्यापारी, कृषक एवं कारीगर होने की अनुमति दी। कुछ शूद्रों ने सैनिक वृत्ति को भी अपनाया। गुप्तकाल के धर्मशास्त्रों ने स्पष्ट रूप से दसों और अस्पृश्यों से शूद्रों को भिन्न बताया है। वैश्य लोगों से शूद्रों को भिन्न बताया गया है। वैश्य लोग जब कृषि से विमुख होने लगे तो शूद्रों ने कृषि को अपना लिया। वायु पुराण में शिल्प और भृति शूद्रों के लिए दो प्रमुख कर्तव्य माने गए हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार, अगर शुद्र भक्ति में निमग्न रहे, मदिरा पान न करे, इन्द्रियों को बस में रखे और निर्भय रहे तो वह भी मोक्ष प्राप्त कर सकता है। मार्कण्डेय पुराण में, दान देना शूद्र का भी कर्त्तव्य बताया गया है। याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शूद्र ओंकार के बदले नमः शब्द का प्रयोग करते हुए पंच महायज्ञ कर सकता है। शूद्रों को रामायण, महाभारत और पुराण सुनने का अधिकार था। योग और सांख्य दर्शन जिसका सर्वोच्च विकास गुप्तकाल में हुआ था, शूद्रों के लिए वर्जित नहीं थे। इस युग में एक महत्तर नामक नई जाति विकसित हुई थी। वस्तुतः ये महत्तर प्रारंभ में गाँव के वृद्ध जन थे। जमीन के क्रय–विक्रय बिक्री में इनकी भी अनुमति ली जाती थी। आगे चलकर यह पृथक जाति हो गया। कृषि व व्यापार में शूद्रों के आने से उनकी सामाजिक स्थिति निश्चय ही सुधरी होगी। विष्णुस्मृति से विदित होता है कि सेवक और शिल्पकारों की गणना शूद्रों में की जाती थी। वे किसी प्रकार अस्पृश्य नहीं समझे जाते थे और समाज में उनका समुचित स्थान था। द्विजातियों के समान उन्हें भी पंचमहायज्ञ करने का अधिकार था। मनु ने शूद्रों के लिए धन संग्रह का निषेध किया है। संभवतः शूद्र भी धन संग्रह की स्थिति में रहे होंगे। शिल्प के क्षेत्र में भी उनका प्रवेश था। अमरकोष में शूद्र शिल्पियों का उल्लेख है जैसे– माली, धोबी, कुम्हार, जुलाहा, राजमिस्त्री, दरजी, चित्रकार, शस्त्रकार, चर्मकार, लुहार, स्वर्णकार, बढई, अभिनेता, नर्तक आदि। बृहस्पति स्मृति में शिल्पियों की पारिश्रमिक दरों का उल्लेख किया गया है। उनकी मजदूरी में बढ़ोत्तरी हो गयी थी। अतः उनकी आर्थिक दशा भी अच्छी रही होगी।

शूद्रों के प्रति वर्णविभेद की भावना दिखाई देती है। शूद्र केवल अपने के साक्षी हो सकते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य की तुलना में शूद्रों को दिये वाला दण्ड कठोर होता था। इस समय भी एक ही अपराध के लिए शूद्रों ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की तुलना में अधिक दण्ड दिया जाता था। यह प्रतीत होता है कि धार्मिक क्षेत्र में शूद्रों के प्रति उदारता दिखायी देती है। पुराणों में उनके लिए सरल भक्तिमार्ग व मोक्ष का प्रतिपादन किया गया है। वे यज्ञ भी कर सकते थे, शांतिपर्व में इसका उल्लेख है। शूद्र रामायण, महाभारत, पुराण भी सुन सकते थे। वेद सुनने का अधिकार भी उन्हें कभी–कभी प्राप्त हो जाता था। गुप्तकाल में शिक्षित शूद्रों के उल्लेख भी मिलते हैं। इस काल में धर्मशास्त्रकार ब्राह्मणों को शूद्र का भोजन करने से मना करते हैं लेकिन कुछ का भोजन ग्रहण किया जा सकता था। याज्ञवल्क्य के अनुसार उच्च वर्ण का व्यक्ति अपने किसान, ग्वाले, नाई या परिवार के शूद्र मित्र का भोजन कर ले तो आपत्तिजनक न था।

कायस्थ– गुप्तकालीन अभिलेखों व साहित्य में कायस्थ का उल्लेख हुआ है। याज्ञवल्क्य स्मृति में पहली बार कायस्थों की चर्चा हुई है। ये किसी उपजाति से सम्बद्ध नहीं थे वरन् लेखन कार्य से जुड़े हुए थे। कायस्थ अधिकतर राजकीय सेवा में थे। गुप्तकालीन अभिलेखों में प्रथम कायस्थ नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता हैं। यह विषय–परिषद् का सदस्य होता था। इन्होंने राजकीय सेवा में ब्राह्मणों को चुनौती देनी शुरू की।

सर्वप्रथम 'कायस्थ' का उल्लेख याज्ञवल्क्य स्मृति में मिलता है। इनसे प्रजा को सावधान रहने को कहा गया है। शूद्रक के मृच्छकटिकम् में कायस्थ का उल्लेख, न्यायालय के लेखक के रूप में हुआ है। लेखक होने के अतिरिक्त वे लेखाकरण, गणना, आय–व्यय और भूमिकर के भी अधिकारी होते थे। स्पष्ट है कि गुप्त काल में कायस्थों का एक वर्ग था जो आगे चल कर एक जाति के रूप में उभरा।

अछूत– चार वर्णों के अतिरिक्त समाज में अछूत थे। इनमें चाण्डाल मुख्य थे। गुप्त युग में चांडालों का उल्लेख मिलता है। ये नगर से बाहर रहते थे। इनका स्पर्श वर्जित था। वे शवों को जलाने, गाड़ने के अलावा शिकार, मछलियाँ पकडना आदि कार्य करते थे। साधारणतः उनके बारे में यह माना जाता था कि वे अपवित्र हैं, झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, नास्तिक क्रोधी है और बिना कारण झगड़ा करते हैं। उनकी पोशाक राजा द्वारा निर्धारित की जाती थी। इनके संदर्भ में स्मृतिकारों के नियम कठोर दिखाई देते हैं। स्मृतियों में इनका कार्य लावारिस मुर्दे हटाना और बधिक का काम करना बताया गया है। फाह्यान ने पाँचवीं शताब्दी में व ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी में इसका उल्लेख किया है। फाह्यान के विवरण से प्रतीत होता है कि जब कभी वे नगर में प्रवेश करते तो लकड़ी से ढोल बजाते चलते थे, ताकि लोग मार्ग से हट जायें और उनका स्पर्श न कर सकें।

दास प्रथा– मौर्कालिन समाज की तरह गुप्तकाल में भी दास प्रथा का अस्तित्व था पर शूद्र होने का तात्पर्य दास होना नहीं था। हाँ, कुछ शूद्र दास होते थे, इसका उल्लेख आया है। नारद स्मृति से दासों की एक सूची प्राप्त होती है जो 15 प्रकार के हैं। जिसमें उनके दास होने के कारणों पर प्रकाश डाला गया है जैसे प्राप्त किया हुआ दास, स्वामी द्वारा प्रदत्त, ऋण न चुका सकने के कारण बना दास, दाँव पर हार जाने वाला, स्वयं दासत्व ग्रहण करने वाला, अपने को एक निर्धारित समय के लिए दास बनाने वाला, आत्मविक्रयी, दायी के प्रेम में पड़ने वाला दास, चोरों या डाकुओं द्वारा बेचा हुआ व्यक्ति, सन्यास छोड़कर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने वाला व्यक्ति। दास घर के कार्य तो करते थे, अन्य गंदे कार्य–सफाई करना, मलमूत्र साफ करना भी करते थे। कात्यायन स्मृति में कहा गया है कि द्विज स्त्री, दास से विवाह करते ही दास हो जाती थी लेकिन यदि दास स्त्री अपने द्विज स्वामी से पुत्र उत्पन्न कर ले तो वह दासत्व से मुक्त हो जाती थी। संकट के समय यदि दास स्वामी के प्राणों की रक्षा करता था तो उसे दासत्व से मुक्त कर दिया जाता था। आधुनिक शोधकायाँ से स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में दास प्रथा शिथिल हो गयी थी। वर्ण व्यवस्था के कमजोर होने से दास प्रथा में भी शिथिलता आई। गुप्तकाल में भूमि अनुदानों की संख्या बढ़ जाने से भूमि छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गयी। इससे कृषि कार्य के लिए अधिक दासों की आवश्यकता नहीं पड़ी होगी। वैसे भी विश्व के अन्य प्राचीन समकालीन समाज की तुलना में भारतीय दासप्रथा का स्वरूप सरल रहा था। उनके साथ सामान्यतः अच्छा व्यवहार किया जाता था।

पारिवारिक जीवनदृ पारिवारिक जीवन का ज्ञान गुप्तकालीन अभिलेखौं व साहित्य से प्राप्त होता है कि गुप्तकालीन परिवार का स्वरूप संयुक्त था। माता–पिता, पुत्र–पुत्री के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धी भी परिवार में रहते थे। परिवार ज्येष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में रहता था। धर्मशास्त्रकारों ने संयुक्त परिवार प्रथा की प्रशंसा की है। पूर्व गुप्तयुग तक परिवार में पिता की शक्ति ही अधिक थी। धीरे–धीरे पुत्र के अधिकार बढ़ने लगे। पैतृक सम्पत्ति में पुत्रों का भी समान रूप से स्वामित्व माना जाने लगा। विभिन्न स्मृतिकारों (याज्ञवल्क्य, बृहस्पति आदि) ने इसका समर्थन किया है। स्मृतिकार मनु व याज्ञवल्क्य माता को गुरु और पिता से ऊँचा स्थान देते हैं। यद्यपि वंश विस्तार की दृष्टि से पुत्री की अवहेलना की गई है फिर भी प्राचीन काल से ही पुत्री माता–पिता के प्रेम की हकदार रही है। मनु पुत्री को पुत्र के बराबर ही मानते हैं। नारद व बृहस्पति के अनुसार कन्या पुत्र की ही तरह पिता की संतान है। अतएव उसे पुत्र के अभाव में दायाधिकार मिलना चाहिए।

प्राचीन काल में परिवार में सामान्यतः एक पत्नी विवाह ही प्रचलित था लेकिन कुछ लोग बहुविवाह करते थे। वर का चयन साधारणतः माता–पिता द्वारा ही किया जाता था। लेकिन स्वयं वर–वधू स्वेच्छा से भी विवाह कर सकते थे। विधवा–विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाहों का भी रिवाज था। अनुलोम व प्रतिलोम विवाहों का भी प्रचलन था। स्वयंवर प्रथा के उल्लेख मिलते हैं। कालिदास ने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है– ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, आसुर,

गंधर्व, राक्षस व पैशाच। प्रथम चार प्रकार के विवाह ही उत्तम कहे गये हैं और अंतिम चार को हेय दृष्टि से देखा गया है।

स्त्री– स्त्रियों की स्थिति में सामान्यतः ह्रास आया। बाल विवाह का प्रचलन था। सामान्यतः 12–13 वर्षों में लड़कियों की शादी होती थी। याज्ञवल्क्य स्मृति में लड़कियों के उपनयन एवं वेदाध्ययन का निषेध किया है। नारद एवं पराशर विधवा विवाह का समर्हन करते हैं। परन्तु वृहस्पति द्वारा इसका विरोध किया गया है। विष्णु, याज्ञवल्क्य एवं बृहस्पति विधवा को संपूर्ण संपत्ति की स्वामिनी मानते हैं, जबकि मनु, नारद और कात्यायन इसका विरोध करते हैं भानुगुप्त के एरण अभिलख से सती प्रथा का प्रथम पुरातात्विक साक्ष्य मिलता है जब गोपराज नामक सेनापति की पत्नी अपने पति के साथ सती हो जाती फाह्यान और ह्वेनसांग पर्दा प्रथा की चर्चा नहीं करते हैं परन्तु कालीदास अभिज्ञानशाकुन्तलम् में अवगुठन शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे यह होता है कि संभ्रात परिवार की महिलाएँ पर्दा करती थीं। देवदासी प्रथा प्रचलित थी। कालिदास के मेघदूत में महाकाल (उज्जैन) मंदिर में रखी जाने वाली देवदासियों की चर्चा है। परन्तु देवदासी प्रथा का प्रथम साक्ष्य अशोक के कुछ ही दिनों के बाद बनारस के पास रामगढ़ से प्राप्त एक गुफा अभिलेख में मिलता है। उस काल में वेश्याओं का भी अस्तित्व था। कामसूत्र में गणिकाओं के प्रशिक्षण की बात की गई है। मुद्राराक्षस से यह ज्ञात होता है कि उत्सवों के समय वेश्याएँ सड़क पर आ जाती थीं।

आठ प्रकार के विवाह।

गुप्त युग में कन्याओं का विवाह सामान्यतः १२–१३ वर्ष की अवस्था में होता था, अतः उनका उपनयन संस्कार बंद हो गया। याज्ञवल्क्य–स्मृति कन्या के लिये उपनयन एवं वेदाध्ययन का निषेध करती है।

सती प्रथा का उल्लेख केवल510 ईस्वी के भानुगुप्त के एरण अभिलेख में मिलता है, जिसके अनुसार उसके मित्र गोपराज की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी सती हो गयी थी। परंतु ऐसा प्रतीत होता है,कि यह प्रथा न तो समाज में लोकप्रिय हो पाई थी और न ही कोई शास्त्रीय मान्यता ही मिल चुकी थी।

समाज में वेश्याओं के अस्तित्व का भी प्रमाण मिलता है। कामसूत्र में गणिकाओं को दिये जाने वाले प्रशिक्षण का विवरण दिया जाता है। इससे यह मालूम होता है, कि व्यवसाय काफी प्रचलित था। मुद्राराक्षस से पता चलता है, कि उत्सवों के समय बङी संख्या में वेश्यायें सङकों पर निकलती थी। मंदिरों में कन्यायें देवदासी के रूप में नृत्यगान करने वाली देवदासियों का विवरण दिया है।

पर्दा प्रदा पर्था का प्रचलन नहीं था तथा स्त्रियाँ स्वतंत्रतापूर्वक विचरण कर सकता थी। किन्तु कुलीनवर्ग की महिलायें बाहर निकलते समय अपने मुँह पर घूँघट डालती थी। गुप्तकालीन स्मृतियों में स्त्री के सम्पत्ति संबंधी अधिकार को मान्यता प्रदान की गयी तथा स्त्रीधन का दायरा अत्यंत विस्तृत कर दिया गया। पुत्र के अभाव में पति की संपत्ति पर पत्नी का अधिकार होता था। नारद तथा कात्यायन आदि स्मृतिकार कन्या को भी पिता की संपत्ति का अधिकारिणी मानते हैं। कात्यायन ने तो यह व्यवस्था दी है, कि स्त्री का अधिकार होता, और वह स्त्रीधन के साथ इसे भी बेच सकती अथवा बंधक रख सकती है।

समाज के उच्च वर्गों का जीवन सुखी तथा आमोदपूर्ण था। संगीत, नृत्य, नाटक आदि के द्वारा लोग आनंद लेते थे। युवकों को प्रणयकला की शिक्षा दी जाती थी। कामसूत्र में इस प्रकार के सुख–संपन्न नागरिकों की दिनचर्या का वर्णन मिलता है। किन्तु यही स्थिति समाज के निम्नवर्गों की नहीं थी।

मूल्यांकन–

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गुप्त काल का साम्राज्य अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि इस काल मे खासकर परंपरागत वर्ण व्यवस्था के आधार पर जातियों का निर्धारण तो हुआ, पर सभी जातियों में सर्वश्रेष्ठ जाति ब्राह्मण समुदाय को ही माना गया। ये समाज के पंथ प्रदर्शक, ज्ञानदाता के साथ समाजसुधाकर भी थे। परन्तु अन्य

जातियों क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को भी समाज के नवनिर्माण, विकास के प्रगति पथ पर, लाने में अहम भूमिका अदा करते हुए उसे सहयोगात्मक प्रयास के साथ सामजस्यतापूर्वक भाईचारा की भावना से गुप्तकाल के सामाजिक बदलाव में चार चाँद लग गया।

संदर्भ सूची

1. भारत का इतिहास– पेज न0– 136 से 141 लेखक– रोमिला थापर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली , 2000
2. इतिहास – पेज नं0 – 254 से 257 तथा 334 से 338 लेखक– डॉ0 ए0 के0 चतुर्वेदी, प्राचार्य , परिष्कार कॉलेज ऑफ ग्लोबल एक्सीलेंस, जयपुर(राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) 2018
3. भारतीय सामंतवाद – पेज नं0– 122 से 131 लेखक– रामशरण शर्मा 2002
4. प्राचीन भारत का इतिहास– 372 से 376 संपादक– द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली 2001
5. इतिहास– भारतीय इतिहास का विषय–बस्तु पेज नं0– 36 से 37 लेखक– डॉ ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव 2019
6. मिश्र, जयशंकर– प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 51
7. शर्मा, रामशरण– प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, अ0–3, पृ0 48
8. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, अ0 1, पृ0 15–16